मानवीय उत्थान की सामाजिक संघर्ष गाथा- प्रत्यंचा

रज्जन प्रसाद शुक्ला*

आधुनिक युग के प्रसिद्ध वरिष्ठ दलित चिंतक एवं कथाकार संजीव का उपन्यास प्रत्यंचा वाणी प्रकाशन द्वारा सन 2019 में प्रकाशित है, यह उपन्यास भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित एवं सामाजिक व्यवस्था से वंचित तबके के अधिकारों को पूर्णतः समर्पित है। जिसमें संजीव ने मनुष्य के सामाजिक ऋणों को बड़ी सूक्ष्मता से परिभाषित किया है। दरअसल प्रत्यंचा उपन्यास संजीव द्वारा लिखे गये जाति-प्रथा,एवं कुरीतियों पर केन्द्रित अनेक वर्षों के शोध का अद्भुत सुखद परिणाम है। भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक,जातीय एवं राजनीतिक भेदभाव का सर्वोत्तम उदाहरण है। प्रत्यंचा संजीव का अविस्मरणीय उपन्यास है, जिसके माध्यम से हमारे समाज में अनादि से व्याप्त जातीय भेदभाव एवं समस्या को भी देखने का सूक्ष्म प्रयत्न किया गया तथा उसके उन्मूलन की भी विस्तृत चर्चा की गई है । इस उपन्यास में जातिवाद भेदभाव, आर्थिक, सामाजिक विषमता–विसंगति एवं उच्च वर्ग द्वारा किए जा रहे शोषण एवं संघर्ष का हृदयस्पर्शी चित्रण है।

संजीव हिन्दी कथा साहित्य के उच्च शिक्षित सजग एवं दलित उत्थान के प्रगतिशील जनवादी साहित्यकार है, आपका स्थान जनवादी धारा के प्रमुख कथाकारों में से एक है, आप मूलतः समाज की मुख्यधारा के वंचित विषयों, क्षेत्रों एवं वर्गों को लेकर गंभीर कथाकार के रूप में सर्वमान्य है। इसमें भारतीय समाज में चिरकाल से व्याप्त जातिप्रथा के खिलाफ़ साहसपूर्ण तरीक़े से लड़ते हुए दलित उत्थान के विकास पर बल मिलता है । प्रत्यंचा भारतीय समाज के सबसे पिछड़े तबके के उन्नायक, सच्चे प्रजातंत्रवादी, चिंतक, शिक्षाविद, एवं समाज सुधारक छत्रपति शाहूजी महाराज की जीवनगाथा है । इस उपन्यास के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक ऋण का विस्तृत (सामाजिक कर्तव्यों) उल्लेख किया गया है, मातृ ऋण, पितृ ऋण, संतान ऋण, गुरु ऋण, और मित्र ऋण की तरह जिस समाज में हम रहते है उसका भी एक ऋण होता है सामाजिक ऋण’’” और जो इंसान इस संसार और समाज की सुधार के लिए अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दें – उनका ऋण । यह उपन्यास मनुष्य एवं समाज के प्रति ऋण बोध कराता है तथा उसी ऋणमुक्ति की एक विनम्र कोशिश कथाकार के द्वारा की गई है ।

राजनीतिक दासता से भी अधिक कष्टकारक होती है – “सामाजिक दासता। कुछ लोग इसे स्वीकार करते है, कुछ नहीं । जो लोग स्वीकार भी करते है, उनमें भी इसका विरोध करने का नैतिक साहस प्रायः दिखाई नहीं पड़ता । छत्रपति शाहूजी महाराज जब राजा बने तब उनके समक्ष इस प्रकार की त्रासदी प्रकट रूप धारण कर चुकी थी, अगर वो चाहते तो बहुत आसानी से इस समस्या का समाधान प्राप्त कर सकते थे। लेकिन नहीं, उन्होंने अपनी व्यक्तिगत पीड़ा को सम्पूर्ण वंचित वर्ग की सामूहिक पीड़ा के रूप में देखा, और इंसान की अन्तरात्मा तक को जला और गला देने वाली इस मर्मांतक घुटन एवं कष्ट को सामूहिक स्वतंत्रता में परिवर्तित करने की प्रतिज्ञा ली। शाहूजी का सम्पूर्ण जीवन स्वतः को और समाज को वर्गहीन, जातिविहीन करने व सभी को सामाजिक न्याय प्राप्त कराने के निरंतर संघर्ष का एक अविस्मरणीय प्रमाण है। शाहूजी का दृढ़निश्चय जाति समापन और सामाजिक बदलाव की इसी संघर्ष को कथाकार संजीव ने प्रत्यंचा में प्रभावशाली ढंग से उठाया है । प्रत्यंचा का शाब्दिक अर्थ है : दो तरफ तनावों के बीच लक्ष्य का संधान ! प्रत्यंचा अर्थात दुर्दम्य प्रत्याख्यान का अभिनव आख्यान !

‘प्रत्यंचा‘ छत्रपति शिवाजी महाराज के उपरांत कोल्हापुर के सबसे योग्यतम उत्तराधिकारी बने छत्रपति शाहूजी महाराज की जीवन गाथा है, जो हिंदी के मूर्धन्य साधक संजीव की साधना है । आज जब सामाजिक –राजनीतिक सत्ता समाज में गैर बराबरी और अलोकतांत्रिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रही है और पूँजीवाद का उसके साथ गहरा गठजोड़ सबको तबाह कर रहा है , तब छोटे से जीवन और शासनकाल में किए गए शाहू जी महाराज के द्वारा किया गया सामाजिक , आर्थिक और प्रशासनिक प्रयोगों की ओर यह उपन्यास हमारा ध्यान आकर्षित करता है।

छत्रपति शिवाजी महाराज ने छापामार युद्ध कौशल एवं रणनीति से विशाल मुग़लसेना को परास्त कर एक नव महाराष्ट्र की स्थापना किया । उन्नीसवीं शताब्दी के छत्रपति शाहूजी ने देश की जातिगत, धर्मगत , कुप्रथाओं तथा कुरीतियों से सतत छापामार युद्ध किया और उन्हें परास्त कर एक नवीन मानव जाति की नींव डाली, जहाँ हिन्दू, हिन्दू नहीं होंगे, मुसलमान, मुसलमान नहीं होंगे, ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं होंगे, दलित, दलित नहीं होंगे । क्या मर्द, क्या औरत, सभी एक समान होंगे। शिवाजी के काल में शत्रु प्रत्यक्ष था, शाहूजी में अप्रत्यक्ष, यह उससे भी ज्यादा कपटी और घातक था, उससे भी ज़्यादा असभ्य, स्वयं अपने और अपनों के ही मांस, मज्जा, खून में समाया हुआ, उसे नोच –नोच कर चबाता है । छत्रपति शिवाजी ने ब्राह्मणों से प्रमाणपत्र लेकर क्षत्रियत्व को प्राप्त किया । इस छत्रपति ने कहा, रखो अपने प्रमाणपत्र अपने पास-, क्षत्रियत्व कोई जाति नहीं, एक अवधारणा है। हर योद्धा क्षत्रिय है, मैं भी क्षत्रिय हूँ, चमार, महार समेत समस्त योद्धा क्षत्रिय हैं ।

जातिभेद और रंगभेद के घाव इतने गहरे और दीर्घकालिक होते हैं कि सत्ता प्राप्ति के उपरांत भी वे यदाचुभते रहते हैं कदा-। एक बड़े वर्ग के लिए सदियों बाद आज भी इनकी चुभन में कोई खास कमी नहीं आई है। कुछ लोग इस सामाजिक तिरस्कार को अपनी नियमन मानकर उससे समझौता कर लेते हैं, लेकिन कुछ इसे साज़िश समझकर इसकी जड़ों तक पहुँचने और उन्हें कुरेदने का सम्पूर्ण प्रयास करते हैं। ऐसे ही समय में महान शासकों में से एक महाराष्ट्र में, कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति’’ शाहूजी महाराज थे। जिन्होंने अपने शूद्र कहलाने की व्यक्तिगत

*हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

त्रासदी को सामूहिक त्रासदी की तरह देखा, समझा और उससे मुक्ति पाने के लिए लगातार कठोर प्रयत्न किए। शाहूजी अंतिम पंक्ति में खड़े इंसान की पीड़ा, त्रासदी, रुदन और विडंबनाओं से अन्तर्मन तक प्रभावित थे, और आम इंसान की त्रासदी को, पाठकों को उसी से महसूस कराते थे।

हमारे देश में जातिप्रथा, छुआछूत, वर्ण व्यवस्था आदि को मूलतः धार्मिक ग्रंथों में वर्णित होने का नतीजा माना जाता है, समाज में इसको समृद्ध करने में हमारे शासकों का भी पूर्ण योगदान रहा। वहीं समकालीन परिदृश्य में भी जाति के नाम पर राजनीति करने का दौर अपने चरम अवस्था में जारी है। मानव विकास के सदियों की इस यात्रा में जातिप्रथा के कोढ़ को दूर करने वाले समाज सुधारक तो अनेक हुए पर इस त्रासदी से जन सामान्य को बचाने का प्रयत्न करने वाले शासक और प्रशासक नाममात्र के हैं। छत्रपति शाहूजी महाराज उन्हीं चंद शासकों में से एक थे जो सत्तासीन होते ही अपनी प्रशासनिक नियुक्तियों में समाज के वंचित वर्गों को जगह देना आरंभ किया, जिसका बहुत दूरगामी प्रभाव पड़ा।

उपन्यास के इस अंश में इसका वर्णन मिलता है, आये दिन सरकारी पदों पर गैर ब्राह्मणों की नियुक्तियां होने लगी । दीवान तारापोरवाला ने शाहू जी को सावधान किया " सर आपकी नीति लोगों के लिए भले ही कल्याणकारी हो, पर ब्राह्मण और अंग्रेज़ आपके प्रति ईर्ष्यालु और प्रतिकूल हो जायेंगे। फिर ये अनुभव हीन युवक राज्य – कार्य चलाने में अक्षम है। बदनामी हो रही है।"

शाहू जी ने जैसे सुना ही नहीं। जले पर नमक ! 24 जून 1896 को प्रभु (कायस्थ) आर.वी सबनीस को मुख्य राजस्व अधिकारी के पद पर बहाल कर दिया। मुस्कराए " मेरे ऊपर पड़ने वाले कलंक का कुछ हिस्सा आपको भी भोगना पड़ेगा। एक साथ सबको संतुष्ट कर पाना लगभग असंभव है "

शाहूजी बड़े तर्कपूर्ण ढंग से जातिप्रथा में विश्वास रखने वालों पर सवाल उठाते हैं। वे उन रामभक्तों से सीधे टकराते हैं, जो राम को अपना आदर्श मानते हैं, राम का जयकारा करते हैं, खुद को रामभक्त कहते हैं, लेकिन राम जैसा सामाजिक सौहार्द और उनके जैसा त्याग अपनाने को तैयार नहीं। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में शाहूजी महाराज ने जो सवाल उठाए थे, वे आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी उतने ही प्रासंगिक हैं। एक जगह वे खुद कहते हैं, उपन्यास का एक अंश देखिए "-:दुनिया में कहीं भी कमज़ोर इंसानों को इतनी बेहयाई के साथ असहाय बनाये रखने की वैसी साज़िश नहीं रची गयी, जैसी कि अपने देश में सनातनियों ने रची। राम ने शबरी, गिद्ध, जटायु तथा केवट, डोम, भीलों, निषाद, वानरों और भालुओं आदि सभी को गले लगाया। । क्यों, नहीं ये आगे बढ़कर गले लगाते ? जातिप्रथा ही ख़त्म हो जाय ! रामभक्त और राम के विरुद्ध आचरण - खुद को कहते हैं! देवताओं के कन्धे पर बन्दूक रख कर दागते हैं ये पाखण्डी।"

नव जीवन देने के लिए अनथक प्रयत्न करने वाले महानायकों में से छत्रपति शाहूजी एक है। जिनके द्वारा निम्न समझी जाने वाली जातियों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के अद्भुत प्रयासों का बेहद जीवंत, वास्तविक और मार्मिक वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। भारत में जातिदंश की त्रासदी से संघर्ष वाले जननायकों में एक है। जातिप्रथा की त्रासदी से गुजर रहे समाज में इस उपन्यास का कथानक आज भी बेहद प्रासंगिक है। संजीव देश के जन सामान्य के मुक्ति के प्रार्थी है, अपने लेखन के माध्यम से हाशियाकृत मानवों की पीड़ा, त्रासदी, विडंबनाओं और करुण रूदन इस उपन्यास के माध्यम से सभी को महसूस कराया है।

यह चिंताजनक बात है कि जिस शाहूजी को स्वामी दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज, ज्योतिबा फूले का सत्यशोधक समाज अपनी वैचारिक परंपरा से जोड़ता रहा है, जिसने लंदन अध्ययन करके से लौटे एक दलित युवा अंबेडकर को अखबार निकालने के लिए, दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी को और रमाबाई पंडिता को आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराना सर्वोपरि समझा। तात्कालिक सत्यशोधक समाज मुकुन्दराव पाटिल की पुस्तक 'कुलकर्णी लीलामृत' का प्रकाशन भी शाहूजी के शासन काल में होता है, जिसमें भारतीय जातिप्रथा के अंतर्विरोध के अप्रतिम उदाहरण मिलते है, इसमें हिन्दू जाति व्यवस्था, जाति में उपजाति, उपजाति में पुनः उपजाति तक का स्पष्ट विवरण मिलता है।

शाहूजी ने सन 1902 ईमें कोल्हापुर में सामाजिक एवं . आर्थिक रूप से पिछड़ों और दलितों के लिए सर्वप्रथम50% आरक्षण की व्यवस्था की, तथा राज्य के बजट का बड़ा भाग प्रारम्भिक शिक्षा के विकास के लिए लगा दिया,जिसने किसी भी सार्वजनिक स्थान - अस्पताल, सरकारी कार्यालयों तथा राजभवन आदि में अस्पृश्यों के साथ हो रहे किसी भी प्रकार के भेदभाव के खिलाफ कठोर कानून बनाए, बल्कि भेदभाव करने वाले सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों की नौकरी 6 माह में समाप्त करके उनकी पेंशन बंद करने के कानूनी दंड भी निर्धारित किए, अकाल और महामारी से जिसने जनता ही नहीं,जानवरों तक को बचाने के सफल प्रयास किये, जिसने सिंचाई के लिए डैम बनाया और नएनए तकनीक के विकास के लिए प्रोत्साहन दिया-, उस राजा के संबंध में हिंदी में लिखित इतिहास,राजनीति, लोक प्रशासन और नवजागरण के विमर्शों में प्रायः कोई जिक्र नहीं मिलता।

शाहूजी शिक्षा पर विशेष बल देते हुए पाठशालाएँ, विशेषकर दलितों एवं बालिकाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य किया, साथ ही साथ सभी देवस्थानों, मठों, एवं अन्य धार्मिक स्थलों की संपत्ति राज-दरबार को आदेशित कर दिया, उनका मानना था कि शिक्षालय से बढ़कर कोई देवालय नहीं हो सकता। शिक्षा के माध्यम से दलित, वंचित तबके के लोगों को मुख्य सामाजिक धारा में जुड़ने का अभूतपूर्व प्रयास किया है, इस उपन्यास में शिक्षा को भागवत भक्ति से ऊपर प्रस्तुत किया गया है- शाहूजी कहते है "भक्ति ईश्वर की और सेवा मानव की"भक्ति के लिए मंदिर या देवस्थान बनाने से कहीं ज्यादा आवश्यक शिक्षा से वंचित मानव जाति के लिए शिक्षालय का निर्माण करना था।

शाहूजी महाराज के शासनकाल में कोल्हापुर में 5% ब्राह्मण थे, जिनका 95% सरकारी संस्थाओं और पदों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अधिकार था । प्रत्यंचा में ब्राह्मणों और ब्राहमणवादी शक्तियों एवं विचारधाराओं का नेतृत्व करते बाल गंगाधर 'तिलक ' दिखाई पड़ते है । शाहू जी महाराज और उनके बीच के वैचारिक संघर्ष के स्पष्ट संकेत मिलते है। शाहू जी महाराज को उनकी राष्ट्रभक्ति पर संदेह नहीं है, परंतु उनका प्रश्न स्वराज में भारत की हाशियाकृत आबादी के अधिकार को लेकर है । ध्यान देने योग्य बात यह है कि शाहूजी महाराज ने उस समय स्त्री उत्तराधिकार कानून बनाया, देवदासियों तक को अधिकार दिए। वे स्त्री शिक्षा का पक्षधर थे जबकि तिलक ने उसका विरोध किया । शाहू जी महाराज ने गैर ब्राह्मणों को शिक्षित बनाने और विभिन्न क्षेत्रों के साथ साथ कानून के अध्यान के लिए प्रेरित किया । वकालत की शिक्षा लेने और वकील बनने के लिए प्रोत्साहित किया ।

उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभिक दशक में महाराष्ट्र किस तरह के वैचारिक आंदोलन की जमीन तैयार थी, यह इस उपन्यास के माध्यम से ज्ञात होता है। इसमें सनातनी ब्राह्मणवादी शक्तियों द्वारा एक सत्यशोधक की हत्या का भी प्रसंग है, साथ ही आधुनिक युग के दलित चिंतकों में डॉनरेंद्र दाभोलकर ., पानसरे, कलबुर्गी, गौरी लंकेश आदि की भी चर्चा की गई है । कम्युनिस्ट नेता डांगे शाहूजी महाराज का भाषण सुनते हुए कहते हैं कि यह तो कम्युनिस्टों की तरह बोलता है, हालाँकि ब्राह्मणवाद का जिक्र आते ही उनकी झुंझलाहट स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। जाहिर है थोड़ी देर के लिए ही सही, पर ब्राह्मणवाद के संदर्भ में कम्युनिस्टों पर यह उपन्यास बहस छेड़ता है। ब्राह्मणवाद के खिलाफ संघर्ष में शाहूजी महाराज कहते है कि जातीय सम्मेलनों को जाति व्यवस्था को बनाए रखने का माध्यम नहीं बनना चाहिए । शाहूजी महाराज अंतर्जातीय विवाह के पक्षधर है । उनका मानना है कि इसकी पहल उच्च वर्गीय जातियों को करना चाहिए।

ब्राह्मणों द्वारा शूद्र घोषित किए जाने से मुक्ति पाने के लिए शिवाजी महाराज ने बनारस से एक पंडित को आमंत्रित किया था और उसे बहुत सारा धन भी दिया था, परंतु शाहूजी महाराज उनकी तरह क्षत्रियत्व की प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करते । उनका मानना है कि जो भी समाज और देश की रक्षा करता है- वहीं क्षत्रिय है, चाहे वह किसी भी जाति का हो ।

'प्रत्यंचा' एक जनतंत्रवादी राजा द्वारा किए गए व्यावहारिक प्रयोगों के आधार पर अति आवश्यक सामाजिक आर्थिक और- राजनैतिक विमर्श को जागृत वाला उपन्यास है । असमानता पर आधारित भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक धारणाओं में बदला आरक्षण, लोकप्रशासन-, शिक्षा, कृषि, चिकित्सा, तकनीक तथा जनता से संबंधित विकास कार्यक्रमों, वैज्ञानिक दृष्टि, अंधविश्वास तथा जातिप्रथा निर्मूलन आदि अनेक संदर्भों में इसकी प्रासंगिकता है ।

देश में अनेक ज्ञात-अज्ञात ऐसी हस्तियाँ है जिन्होंने जाति प्रथा, भेदभाव तथा अनादि काल से चली आ रही रूढ़ियों और अंध आस्थाओं के विरोध में जीवन पर्यंत मशाल जलाए रखी । संजीव का यह उपन्यास 'प्रत्यंचा ' छत्रपति शाहू जी महाराज का सामजिक दासता के खिलाफ अविराम संघर्ष करने वाले एक प्रतापी नायक के रूप में प्रतिस्थापित करता है । संजीव के वर्णन सदैव ही बेहद जीवंत एवं चमत्कृत करने वाले और विषय से संबंध स्थापित करने वाले होते हैं। उनके उपन्यासों में प्रयोग होने वाली खास संवाद शैली किसी भी विषय को प्रभावशाली बनाने की योग्यता रखती है। मुख्य बात यह है कि यदि उनका कथ्य पाठकों के व्यक्तिगत जीवन का हिस्सा न भी रहा हो, तो भी वे उससे गहरा जुड़ाव महसूस करते हैं। यह बात इस उपन्यास को पढ़ते हुए लगातार महसूस होती रही।

संजीव कहते हैं कि राजनीतिक गुलामी से ज्यादा त्रासद है सामाजिक गुलामी, राजनीतिक गुलामी का शत्रु व्यक्ति होता है, जिसे रणनीति बनाकर परास्त करके उससे मुक्ति पाई जा सकती है। लेकिन सामाजिक गुलामी बहुआयामी होती है और कोई एक व्यक्ति शत्रु नहीं होता, जिसे परास्त करने भर से सामाजिक आजादी और सम्मान पाया जा सके, इसलिए यह ज्यादा त्रासद, ज्यादा लंबी चलने वाली, ज्यादा विडंबनापूर्ण और ज्यादा गहरी और विस्तृत होती है। हमारे देश में सामाजिक गुलामी की मूलजड़ जातिप्रथा है, लेकिन जातिप्रथा का कोई एक निश्चित चरण नहीं, इसलिए सदियों से चले आ रहे इस रूढ़िवादियों से पार नहीं पाया जा सका है।

महाराष्ट्र में जातिप्रथा का दंश झेल रही पीढ़ियों को सम्मान सहित जीने योग्य तथा समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए शाहूजी ने अनथक प्रयास किए । उनके प्रयासों का जीवंत, वास्तविक और मार्मिक वर्णन इस उपन्यास में किया गया है, भारत की जातिप्रथा जैसी भयानक परंपरा से लड़ने वालों नौजवानों के लिए 'प्रत्यंचा' पढ़ने योग्य उपन्यास है। इसके कथानक आज भी प्रासंगिक है । शाहूजी महाराज को कुछ लोग जनतंत्रवादी तथा कुछ क्रांतिकारी राजा के रूप में याद करते है जबकि डॉ अम्बेडकर ने कहा- "वे राजाओं में मनुष्य थे और मनुष्यों में राजा" तथा उन्हें "ब्राह्मणवाद को मटियामेट" करने वाले राजा के रूप में याद किया जाएगा । दलितों के उत्थान तथा उनके सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक विकास के लिए जिस प्रकार से शाहूजी ने विषम परिस्थितियों में कार्य किया वो अविस्मरणीय रहेगा । वास्तविक रूप से एक जनतांत्रिक शासक के रूप में उनके द्वारा किये गए सामाजिक परिवर्तनों को लोहियावादी एवं अंबेडकरवादी विचारधारा की तरह भारतीय जनमानस को अवगत कराया जाना चाहिए । संजीव के इस उपन्यास का लेखन केंद्र बिंदु में मजदूर, किसान, अल्पसंख्यक, दलित, आदिवासी तथा जातिवाद द्वारा शोषित-समुदायों की अनंतकाल से चली आ रही वेदना, साथ ही उनके अस्मिता संघर्ष को भी एक सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है। भारतीय समाज में वर्ग और जातीयता को आधार बनाकर वर्षों से निम्न वर्ग का अतिशय शोषण किया गया, प्रत्यंचा के माध्यमसे इसका यथार्थ वर्णन एवं विद्रोह का स्वर प्रदान किया है।

संदर्भ ग्रंथ-: प्रत्यंचा – (उपन्यास)संजीव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2019 प्रथम -

गीता और शिक्षा दर्शन : उपादेयता व प्रासंगिकता

ऐश्वर्या सिंह*

सारत्व

भारतीय दर्शन में ज्ञान शब्द वही अर्थ रखता है जो व्यापक अर्थों में शिक्षा का होता है। श्रीमद्भागवद्गीता महाभारत का एक अंश है जहाँ श्रीकृष्ण ने शिक्षक के अवतार में अर्जुन रूपी शिष्य को निष्काम कर्म करने की शिक्षा दी है। गीता दर्शन देश–काल से परे सार्वभौमिक है जो कि वर्तमान में सन्दर्भ में पूरी तरह से प्रासंगिक है प्रस्तुत लेख में शिक्षा दर्शन को वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मनोविज्ञान के सिद्धांतों जैसे– करके सीखना, अभिप्रेरणा पर बल, व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता को महत्व, छात्र अभिप्रेरणा पर बल योग्यतानुसार शिक्षा इत्यादि को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। गीता दर्शन भी छात्र–अभिप्रेरणा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, योग्यतानुसार शिक्षा इत्यादि को महत्वपूर्ण मानता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन पर ज्ञान थोपा नही है। बल्कि अर्जुन को सीखने के लिए प्रेरित करते हैं, उसके पश्चात अर्जुन को ज्ञान देते है। वर्तमान में योग्यतानुसार छात्र का चयन कर शिक्षा देने की बात की जा रही है। गीता योग्यतानुसार शिक्षा देने का बहुत बड़ा उदाहरण है। श्री कृष्ण ने गीता की शिक्षा देने के लिए अर्जुन का चुनाव किया, क्योंकि अर्जुन ही इस शिक्षा के योग्य थे जिससे यह सिद्ध होता है। प्रस्तुत लेख में उपयोगिता तथा प्रासंगिकता को समझ पायेगे तथा गीता की शिक्षा का उपयोग अपने जीवन में भी कर पाएँगे।

मुख्य शब्द– कर्तव्य, स्वतंत्रता, समानता।

भारतीय दार्शनिक विचारधारा शिक्षा का अंतिम उद्देश्य आत्मानुभूति अर्थात स्वयं को जानना, ईश्वर को जानना, मानती है। गीता के अनुसार भी शिक्षा वह है जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित ब्रह्म अथवा परमात्मा की अनुमति करवाने में सहायक होती है। शिक्षा ही वह माध्यम है जो मनुष्य की आत्मा की अनुमति को अन्धकार से दूर करके प्रकाश की तरफ ले जाए। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य सभी प्राणियों में परमात्मा के दर्शन कर सकता है। भारतीय दार्शनिक विचारधारा में शिक्षा को तृतीय नेत्र की संज्ञा दी गयी है। श्रीमद्भागवद्गीता का शिक्षा दर्शन आधुनिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से भी पूरी तरह प्रासंगिक है गीता में जगद्गुरू श्री कृष्ण द्वारा शिष्य के रूप में अर्जुन को अपने कर्तव्य का पालन करने की शिक्षा दी गई है। श्री कृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म करने की शिक्षा दी है। कर्म की महत्ता का विवेचन करते हुए स्पष्ट किया गया है कि फल की इच्छा किये बिना कर्म करने वाला कभी फल से रहित नहीं रहता है श्रीकृष्ण ने स्वयं भी कर्म में लिप्त रहने का कारण बताते हुए कहा है कि–

न यें पार्थस्ति कर्तव्य त्रिणु लोकेषु किंचना।
नान वाप्तमवतव्यं वर्त ए व च कर्मणि।।
यदि हृदहं न वर्तेयं जातु कर्मव्यतन्द्रितः ।
मम वत्मानुर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।
उत्सी देमुरिमें लोका न कुर्मी कर्म चेदहम्।
सकस्सय च कर्ता स्यामुपहन्यामिमा प्रज्ञाः।।

आधुनिक समय बाल–केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था का है जिसमें बालक की व्यक्तिगत विभिन्नता रूचि योग्यता, क्षमता इत्यादि को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। गीता दर्शन भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पूरी तरह प्रासंगिक है क्योंकि गीता में उन सभी मुद्दों पर बल दिया जाता है जिसकी व्यवस्था आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था में की जाती है। गीता–दर्शन किस प्रकार आधुनिक शिक्षा के लिए प्रासंगिक है इसका अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं–

1. कर्तव्य पर बल
2. स्वतंत्रता को महत्व
3. शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया
4. समानता पर बल
5. गुरू शिष्य सम्बन्ध स्नेहपूर्ण
6. बाल प्रकृति के अनुसार शिक्षा
7. छात्र अभिप्रेरणा पर बल
8. योग्यतानुसार छात्रों का चयन

गीता और आधुनिक शिक्षा

गीता में जगद्गुरू श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो भी शिक्षा दी वो केवल तत्कालीन परिस्थितियों पर ही लागू नहीं होती बल्कि हर परिस्थति पर लागू होता है। आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था में भी शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य छात्र को अन्धकार से दूर करके प्रकाश की तरफ अग्रसर करना है अर्थात शिक्षक छात्र को अज्ञान से दूर करके ज्ञान की तरफ प्रेषित करता है। नीचे दिये गये बिन्दुओं के माध्यम से हम गीता दर्शन का अध्ययन आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कर सकेगें।

कर्तव्य पर बल

श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा सारगर्भित ग्रन्थ है जो मनुष्य के विकास क्रम को तीन स्थितियों में प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ शिक्षा की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो शिक्षा दी है वह समस्त मनुष्य जाति के लिए साक्षात उदाहरण है। श्रीकृष्ण ने इस रणभूमि में अर्जुन को उपदेश देकर शिक्षा को साकार रूप दिया है जिसे संसार में आज भी स्वीकार किया जाता है।

*असिस्टेंट प्रोफेसर (शिक्षाशास्त्र),नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निष्काम कर्म करने की शिक्षा दी है। अर्जुन युद्धभूमि में युद्ध करने से मना करता है तब श्रीकृष्ण उसे समझते है कि युद्ध करना उसका क्षत्रिय धर्म है तथा उसे कर्तव्य करते हुए अपने धर्म का पालन करना चाहिए। आज के युग में भी किसी कर्म की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता, पूरी शिक्षा–व्यवस्था ही कर्म पर आधारित है। गीता दर्शन मनुष्य को कर्म के फल से उत्पन्न अहंकार से बचाता है तो दूसरी तरफ कर्म के विफल होने की कुंठा से भी रक्षा करता है। कर्म करने के उपरान्त अगर सफलता नहीं मिलती है तो इसका आशय यह नहीं है कि कर्म करना छोड़ दिया। वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाय तो कक्षा– शिक्षण में शिक्षक सदैव ही छात्रों को कर्म करने के लिए अभिप्रेरित करता है अगर छात्र को लक्ष्य प्राप्ति करना ही छोड़ दे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही शिक्षा दी है कि सदैव अपना कर्म करों, फल की इच्छा न करो ''**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**

स्वतंत्रता को महत्व

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार मनुष्य को निर्णय लेने तथा कर्म करने की स्वतन्त्रता है किन्तु स्वतंन्त्रता का आशय यह नहीं है कि वह अकरणीय कर्म करें। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अन्तःकरण से प्रेरित होकर कर्म करने को कहा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर ईश्वर निवास करता है और अन्तःकरण ईश्वर से प्रेरित होता है अतः जहाँ ईश्वर विद्यमान हो वहाँ गलत कार्य हो ही नहीं सकता है। गीता दर्शन से शिक्षा लेते हुए आधुनिक समय में भी अगर सभी मनुष्य अपने अन्तःकरण की आवाज सुनकर स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करना तो इससे व्यक्ति और समाज दोनों को लाभ होगा। वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में भी छात्र अपनी अभिरूचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता इत्यादि को ध्यान में रखकर ही अपने शैक्षणिक कार्यों का चयन करता है। पाश्चात्य प्रकृतिवादी दार्शनिक रूसो तो बालक को पूरी तरह स्वतन्त्र छोड़ देने के लिए कहता है रूसो का नारा ही है स्वतंत्रता। रूसो कहता है कि छात्र को स्वंतत्र छोड़ दो, उसकी प्रकृति शुद्ध है वह जो भी करेगा, उसे अपने अनुभवों से सीखने दों।

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया –

शिक्षा के उद्देश्यों आदर्शों एवं मूल्यों का अत्यंत विशद तथा सुन्दर विवेचन गीता में किया गया है। आदर्श इतने महान तथा उच्च दिखाई पड़ते है कि कभी कभी एक सामान्य शिक्षक यह सोचने पर विवश हो जाता है कि क्या इन उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव है? किन्तु हमें यह नही भूलना चाहिए कि गीता के उद्देश्य केवल शिक्षा तक ही नही सीमित है अपितु गीता की शिक्षा तो जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षक को गीता के इस दर्शन से प्रेरित होकर छात्र को सदैव सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए। शिक्षक को स्वयं भी सदा अध्ययनशील रहना चाहिए। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षक को आजीवन नये अनुभवों को प्राप्त करने की लालसा तथा अधिकाधिक ज्ञानार्जन की वृत्ति बनाए रखनी चाहिए । टैगोर ने यह भी कहा है कि '' शिक्षक तब तक वास्तविक रूप से अध्यापन नहीं कर सकता, जब तक वह स्वयं निरन्तर अध्ययनशील न रहे। शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य सतत अध्ययनशील है।

समानता पर बल

गीता के अनुसार हममें से प्रत्येक के अन्दर देवत्व का वास है जो कभी लुप्त नहीं होता। हम सब उस ईश्वरीय ज्योति से प्रकाशित है जो जन्म– जन्मान्तर तक बनी रहती है। अध्यापक के लिए छात्र की यह संकल्पना अत्यंत महत्व रखती है। उसके शिक्षार्थी पंच तत्वों के बने हुए शरीर–इन्द्रिय–युक्त नामरूपी प्राणी ही नहीं, उसमें आत्मा का निवास है और वह आत्मा दैवी है गीता दर्शन से प्रेरित शिक्षक सभी छात्रों के साथ एक समान व्यवहार करेगा क्योंकि वह प्रत्येक छात्र में ईश्वर का अंश देखेगा। शिक्षक के लिए छात्र के जाति, धर्म, लिंग, समुदाय, स्थान इत्यादि का कोई औचित्य नहीं रह जायेगा, वह सभी के विकास के लिए प्रयास करेगा। आधुनिक समय में विश्व के लगभग सभी देशों में लोक तान्त्रिक शासन प्रणाली है और लोकतन्त्र का एक प्रमुख सिद्धांत समानता है। अतः गीता दर्शन वर्तमान शैक्षिक–व्यवस्था के लिए पूरी तरह से प्रासंगिक है।

गुरूः शिष्य सम्बन्ध स्नेहपूर्ण–

गीता शिक्षा–दर्शन सार्वकालिक है इसका सम्बन्ध काल विशेष से नहीं है। सामाजिक परिवर्तन सदैव होते रहते हैं और उस परिवर्तन के अनुरूप सामाजिक प्रक्रिया को नियन्त्रित करने के लिए शिक्षक को सदा अवतार की भूमिका निभानी पड़ती है। गीता में कृष्ण ने तत्कालिक धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों को दूर करके मानव को निष्काम कर्मयोग'' का पाठ पढाने हेतु अवतार लेकर शिक्षक की भूमिका निभाई थी। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा कि –

मक्तोऽसि में सखा चेति।

अर्थात हे अर्जुन तू मेरा भक्त और मित्र भी है। श्रीकृष्ण और अर्जुन का यह सम्बन्ध गुरू और शिष्य के सम्बन्ध का अप्रतिम उदाहरण है। श्रीकृष्ण ने शिक्षक के रूप में शिष्य अर्जुन को जो शिक्षा दी है। वह केवल उस काल के लिए ही उपयोगी नहीं है बल्कि गीता की शिक्षा सर्वकालिक है। वर्तमान समय में शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध केवल कक्षा तक सीमित रह गया है कक्षा के बाहर न तो शिक्षक छात्र को पहचानता है और न ही छात्र शिक्षक को। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि शिक्षा

ग्रहण करने की प्रथम शर्त यह है कि विद्यार्थी के हृदय में शिक्षक के प्रति श्रद्धा भाव हो। स्वामी जी ने कहा है" शिक्षक के प्रति श्रद्धा, विनम्रता, समर्पण तथा सम्मान की भावना के बिना हमारे जीवन में कोई विकास नहीं हो सकता।" पाश्चात्य देशों की तरह भारत में भी शिक्षक एक व्याख्याता मात्र रह गया है। जिसका कार्य केवल व्याख्यान देना है तथा तनख्वाह को मस्तिष्क में भरने वाले मात्र रह गये हैं।

शिक्षक रूपी श्रीकृष्ण तथा शिष्य रूपी अर्जुन का व्यक्तित्व हम सबके लिए आदर्श होना चाहिए। श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच जैसा सम्बन्ध था वैसा ही सम्बन्ध शिक्षा– व्यवस्था में शिक्षक और छात्र के बीच होना चाहिए। गीता दर्शन से प्रेरित शिक्षक सदैव अपने छात्रों के साथ पुत्र के समान व्यवहार करेगा, तथा छात्र अपने शिक्षक का आदर पिता के समतुल्य करेगा।

अतः गुरू शिष्य के सम्बन्ध की दृष्टि से श्रीमदभगवद्गीता का दर्शन पूरी तरह से प्रासंगिक है।

बाल– प्रकृति के अनुसार शिक्षा

आधुनिक युग मनोविज्ञान का युग है मनोविज्ञान छात्र के व्यवहार के अध्ययन को महत्व देता है तथा बालक को उसकी प्रकृति के अुनरूप आचरण करने पर बल देता है। पाश्चात्य दार्शनिक विचारधारा प्रकृतिवाद तो यहाँ तक कहता है कि शिक्षा बालक के लिए बना है न कि बालक शिक्षा के लिए बना है अतः शिक्षण–प्रक्रिया का निर्धारण अध्यापक या अन्य कोई और नहीं कर सकता बल्कि छात्र की प्रकृति को ध्यान में रखकर शिक्षण–प्रक्रिया का निर्धारण करना चाहिए। प्रत्येक बालक एक दूसरे से अलग है सबकी रूचियाँ, योग्यताए, क्षमताएँ, आवश्यकताएं इत्यादि भिन्न –भिन्न है इसलिए सबको एक समान शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए।

उपरोक्त सभी तथ्यों का वर्णन श्रीमदभगवद्गीता में पहले ही किया जा चुका है। गीता के अनुसार प्रत्येक बालक अपनी प्रकृति के अनुरूप आचरण करता है इन्द्रिय निग्रह के द्वारा भी प्रकृति की इस प्रबल शक्ति को नहीं रोका जा सकता है। अतः एक शिक्षक छात्र को तभी शिक्षित कर पाएगा जब वह स्वयं उसकी प्रकृति को समझेगा। गीता में कहा गया है–

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेज्ञनिवानपि।
प्रकृति यान्ति भूतानि, निग्रहः किं करिष्यति ।।

गीता में बालक की प्रकृति को ''स्वधर्म'' अथवा सहज–कर्म कहा गया है तथा इस ''सहज कर्म'' को ध्यान में रखकर ही बालक के शिक्षा की व्यवस्था करने की अपेक्षा की गई है–

सहजकर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निखिादृता।।

वर्तमान आधुनिक शिक्षा बालक की प्रकृति को ध्यान में रखती है अगर बालक की प्रकृति दोष युक्त है तो शिक्षा के द्वारा उसे दोषमुक्त कर सही राह पर लाने का प्रयास किया जाता है। इसी प्रकार गीता शिक्षा दर्शन ''सहज–कर्म''(बाल प्रकृति) के दोष–युक्त हाने पर उसका त्याग नहीं करने की बात करता है क्योंकि सभी आरम्भ (शिक्षा का आरम्भ) किसी न किसी दोष से व्याप्त होता ही है जिस प्रकार आग के साथ धुँआ रहता है। शिक्षा के द्वारा धीरे–धीरे दोषों का निवारण करके छात्र को अग्नि के समान तेजोमय बनाया जाता है। अतः गीता–दर्शन बाल–प्रकृति को ध्यान में रखकर शिक्षा देने की अनुशंसा करता है।

छात्र अभिप्रेरणा पर बल–

अधिगम की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का मुख्य स्थान रहता है जब तब छात्र सीखने के लिए आन्तरिक रूप से अभिप्रेरित नहीं होगा तब तक वह सीख नही पायेगा। यह भी कहा गया है कि आप घोड़े को कुए तक तो ले जा सकते हैं लेकिन उसे पानी नहीं पिला सकते हैं अर्थात जब तक सीखने वाला स्वयं सीखने के लिए तत्पर नहीं होगा तब तक सीख नहीं पायेगा।

नये ज्ञान को देने से पूर्व शिक्षक को यह देख लेना चाहिए कि शिक्षार्थी में उस ज्ञान को प्राप्त करने की अभिप्रेरणा है या नहीं। अभिप्रेरणा कभी–कभी परिस्थति वश उत्पन्न होती है तथा कभी सहज प्रकृति के फलस्वरूप उत्पन्न होती है और कभी–कभी अध्यापक प्रयास करके छात्र की सुषुप्त अभिप्रेरणा को जागृत करता है। कुरूक्षेत्र की युद्धभूमि में ऐसा ही स्थिति उत्पन्न होती है जब परिस्थति के कुचक्र में फँसकर अर्जुन मोहासक्त हो जाता है तब श्रीकृष्ण उसे ''सहज– स्वभाव के अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं तब अर्जुन कहता है–

कार्यवयदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूदचेताः।
यच्छेयः स्याभिश्चितं ब्रहि तन्में
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।

अर्थात अर्जुन श्रीकृष्ण से ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है।

अतः गीता इस बात को बलपूर्वक कहती है कि ज्ञान प्रदान करने के पूर्व छात्र को अभिप्रेरित करना आवश्यक है।

योग्यतानुसार छात्रों का चयन–

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत विद्यालय अथवा महाविद्यालय स्तर पर छात्रों का चयन योग्यता के अनुसार किया जाता है क्योंकि अयोग्य छात्रों का चयन करने पर समय, श्रम, व धन की बर्बादी होती है तथा उसका कोई अपेक्षित परिणाम भी नहीं निकलता है।

इसलिए सभी स्तरों पर प्रवेश परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है जिससे अयोग्य छात्रों को अलग कर योग्य छात्रों को प्रवेश दिया जाता है।

गीता का भी यह दृढ़ मत है कि केवल सत्पात्र को ही ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए। शिक्षा प्राप्त करना सभी का अधिकार है किन्तु शिक्षक का भी यह व्यावसायिक अधिकार है कि वह उसी छात्र का चयन करे जो शिक्षा ग्रहण करने के लिए पात्र है उस छात्र का चयन नहीं करें जो शिक्षा के लिए उचित पात्र नहीं हैं। गीता में सत्पात्र के निम्नाकिंत लक्षण कहे गये हैं–''शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए छात्र में संयम तथा तप होना चाहिए, उसमें शिक्षक के लिए श्रद्धा होनी चाहिए, सुनने के लिए उसमें तत्परता होनी चाहिए। शिष्य ऐसा नहीं होना चाहिए, जो अध्यापक के दोषों को देखता रहे।''

गीता दर्शन में यह भी कहा गया है कि शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक छात्र का अधिकार है किन्तु प्रत्येक छात्र की योग्यता एक दूसरे से भिन्न होती है। अतः प्रत्येक अध्यापक का यह दायित्व है कि वह छात्रों की योग्यता की पहचान कर शिक्षा देने का प्रयत्न करे। विद्यार्थी का भी यह कर्तव्य है कि वह शिक्षक के प्रति श्रद्धा भाव रखे, किन्तु उनका अन्धानुकरण न करे। अपनी शंकाओं के समाधान के लिए छात्र शिक्षक के साथ परिचर्चा करें शिक्षक व छात्र दोनों मिलकर शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का सम्पादन सफलता पूर्वक कर सकते हैं।

निष्कर्ष–

श्रीमद्भगवद्गीता बदलते सामाजिक परिदृश्य में अपनी महत्ता को बनाए हुए है। भारतीय विचारधारा के निर्माण में गीता की शिक्षा की महती भूमिका रही है। इसके द्वारा मानव समाज को दी गयी धार्मिक सहिष्णुता की शिक्षा आज भी अनुकरणीय है। इसकी शिक्षा सार्वभौम है अर्थात धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश–काल और परिस्थति से परे है। महाभारत युद्ध के समय जब श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश दे रहे है उस समय श्रीकृष्ण शिक्षक की भूमिका में है तथा अर्जुन छात्र की भूमिका में हैं इन दोनों के बीच में जो सम्बन्ध है वो शिक्षक–छात्र सम्बन्ध का सर्वोत्तम उदाहरण है वर्तमान युग में भी इस प्रकार का शिक्षक–छात्र सम्बन्ध समाज में समस्याएं उत्पन्न होती है शिक्षक को भी अवतार की भूमिका निभानी पड़ती है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्यानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाम सम्भवामि युगे युगे।। 8

श्री कृष्ण ने जो कार्य महाभारत के युद्ध के समय किया है वही कार्य वर्तमान समय में शिक्षक को करना पड़ेगा। शिक्षक के रूप में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने, स्वतंत्रता पूर्वक विचार करने, स्वयं के प्रकृति को महत्व देने की शिक्षा दी है। गीता दर्शन में सीखने से पूर्व छात्र को अभिप्रेरित करने पर बल दिया है जो कि वर्तमान में शिक्षा मनोविज्ञान के अभिप्रेरणाा के सिद्धांत से सम्बन्धित है। गीता दर्शन की शिक्षा छात्रों का चयन योग्यतानुसार करने पर बल देती है, श्रीकृष्ण ने गीता की शिक्षा देने के लिए अर्जुन का चुनाव किया क्योकि अर्जुन ही सबसे योग्य व सीखने हेतु तत्पर था। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के अर्न्तगत भी छात्रों का चयन योग्यता को ध्यान में रखकर करने पर बल दिया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गीता का शिक्षा दर्शन किसी काल विशेष के लिए नहीं था, अपितु वह सार्वकालिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 ओड़ लक्ष्मीलाल के (2010), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर : राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2 गुप्त लक्ष्मी नारायण एवं मोहन मदन (2009), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, इलाहाबाद : न्यू कैलाश प्रकाशन।
3 पाल ए स0के0, गुप्त लक्ष्मी नारायण, व मोहन मदन (1994), शिक्षा दर्शन, इलाहाबाद : कैलाश प्रकाशन।
4 सारस्वत मालती, मोहन मदन (2000), भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समास्याए ं, इलाहाबाद :कैलाश प्रकाशन।
5 एन0सी0एफ (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद।
6 गुप्ता एस0पी0 (2018), मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा, इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन।
7 पाण्डेय रामशकल (2010) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, आगरा : अग्रवाल ।
8 पाण्डेय कामता प्रसाद (2005), शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालयप्रकाशन : वराणसी।
9 मालवीय राजीव, विजिटिंग फैकेल्टी, चर (2012), शिक्षा के मूल सिद्धांत, शारदा पुस्तक भवन : इलाहाबाद।
10 विवेकानन्द स्वामी (2014) प्राच्य और पाश्चात्य (सत्रहवाँ पुनर्मद्रण), रामकृष्ण मठ रामकृष्ण आश्रम मार्ग धन्तोली।
11 विवेकानन्द स्वामी (2016), शिक्षा का आदर्श, (षष्ठ पुनर्मुद्रण) नागपुर : रामकृष्ण मठ रामकृष्ण आश्रम मार्ग घन्तोली।

12 विवेकानन्द स्वामी (2015), शिक्षा का आदर्श, (षष्ठ पुनर्मुद्रण) नागपुर : रामकृष्ण मठ रामकृष्ण आश्रम मार्ग धन्तोली

13 Bhola P. (2018). Education and Society, Laxmi Narain Agarwal : Agra.

14 Shodhganga.inflibnet.ac.in
https://him.wikipedia.org